मंगलाचरण

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्व साहूणं

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतम गणी
मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं

अर्पण

कल्याणमूर्ति श्रीसदगुरुदेवको
जिन्होंने इस पामर पर अपार उपकार किया है। जो स्वयं
मोक्षमार्ग में विचर रहे हैं और अपनी दिव्य श्रुतधारा
द्वारा भरतभूमि के जीवों को सततरूप से मोक्षमार्ग
दर्शा रहे हैं जिनकी पवित्र वाणी में मोक्षमार्ग के
मूलरूप कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन का माहात्म्य
निरन्तर बरस रहा है और जिनकी परम कृपा से
यह ग्रन्थ तैयार हुआ है – ऐसे कल्याणमूर्ति
सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझानेवाले
कल्याणमूर्ति श्री सदगुरुदेव को यह
ग्रन्थ अत्यन्त भक्तिभाव से
अर्पण करता हूँ......

– दासानुदास रामजी

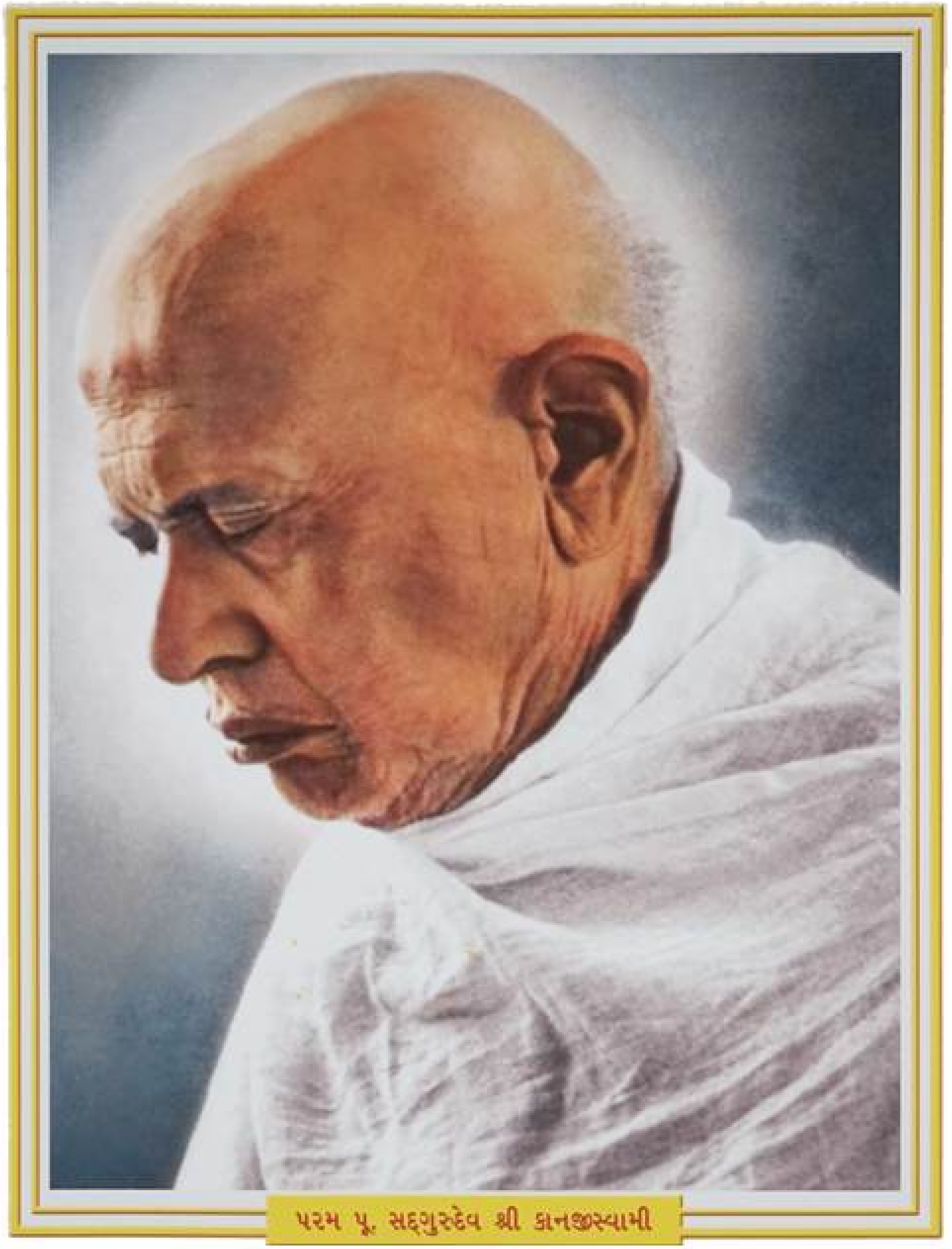

तत्त्वार्थसूत्र

अध्याय २, सूत्र १

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्यस्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥

अर्थ - [जीवस्य] जीव के [औपशमिकक्षायिकौ] औपशमिक और क्षायिक [भावौ] भाव [च मिश्रः] और मिश्र तथा [औदयिक-पारिणामिकौ च] औदयिक और पारिणामिक, यह पाँच भाव [स्वतत्त्वम्] निजभाव हैं, अर्थात् यह जीव के अतिरिक्त दूसरे में नहीं होते ।

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदाः यथाक्रमम् ॥ २ ॥

अर्थ - उपरोक्त पाँच भाव [यथाक्रमम्] क्रमशः [द्वि नव अष्टादश एकविंशति त्रिभेदाः] दो, नव, अट्ठारह, इक्कीस और तीन भेदवाले हैं।

अध्याय २, सूत्र २ - पाँच भाव के भेद

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा: यथाक्रमम् ॥ २ ॥

- पाँच भाव
  - औपशमिक
    - २ भेद
  - क्षायिक
    - ९ भेद
  - क्षायोपशमिक
    - १८ भेद
  - औदयिक
    - २१ भेद
  - पारिणामिक
    - ३ भेद

सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥

अर्थ - [सम्यक्त्व] औपशमिकसम्यक्त्व और [चारित्रे] औपशमिकचारित्र – इस प्रकार औपशमिकभाव के दो भेद हैं।

सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥

(१) **औपशमिकसम्यक्त्व** –

- जब जीव के अपने सत्यपुरुषार्थ से औपशमिकसम्यक्त्व प्रगट होता है, तब मिथ्यात्वकर्म का और अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का स्वयं उपशम हो जाता है।
- अनादि मिथ्याद्रष्टि जीवों के तथा किसी सादि मिथ्याद्रष्टि के मिथ्यात्व एक और अनन्तानुबन्धी की चार, इस प्रकार कुल पाँच प्रकृतियाँ उपशमरूप होती हैं। शेष सादि मिथ्यादृष्टि के सात प्रकृतियों का उपशम होता है। जीव के इस भाव को औपशमिकसम्यक्त्व कहा जाता है।

(२) औपशमिकचारित्र –

- जीव जिस चारित्रभाव से उपशमश्रेणी के योग्य भाव प्रगट करता है, उसे औपशमिकचारित्र कहते हैं।
- उस समय मोहनीयकर्म की अप्रत्याख्यानावरणादि २१ प्रकृतियों का स्वयं उपशम हो जाता है।

अध्याय २, सूत्र ४ - क्षायिकभाव के ९भेद

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥ ४ ॥

अर्थ - [ज्ञानदर्शददानलाभभोगोपभोगवीर्याणि] केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकठपभोग, क्षायिकवीर्य तथा [च] च कहने पर, क्षायिकसम्य्यक्त्व और क्षायिकचारित्र – इस प्रकार क्षायिकभाव के नौ भेद हैं।

अध्याय २, सूत्र ४ - क्षायिकभाव के ९भेद

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥ ४ ॥

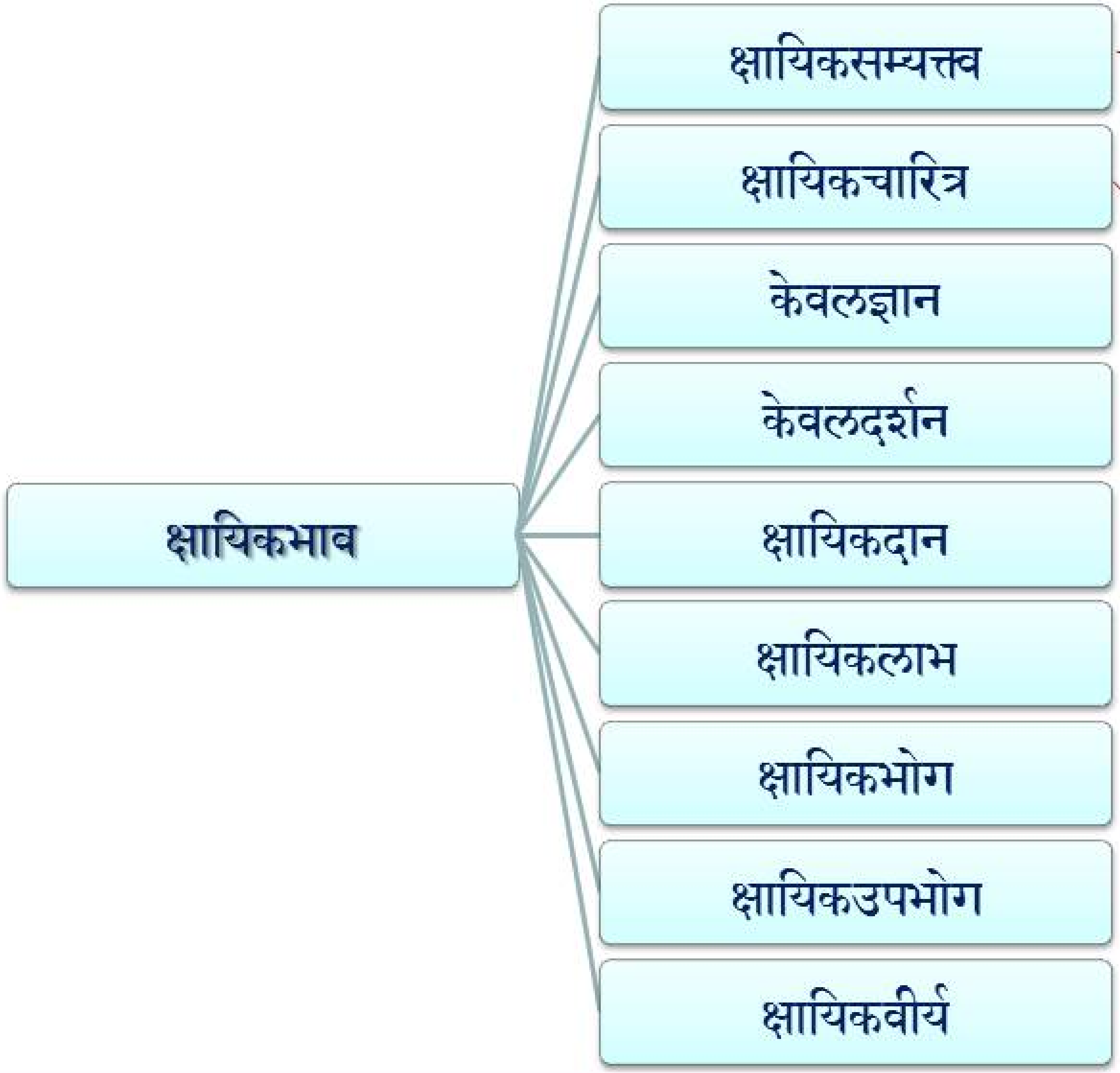

अपने मूलस्वरूप की दृढ़तम प्रतीतिरूप पर्याय, क्षायिक सम्यक्त्व है; जब वह प्रगट होती है, तब मिथ्यात्वकी तीन और अनन्तानुबन्धी की चार, इस प्रकार कुल सात कर्म-प्रकृतियोंका स्वयं क्षय होता है।

अपने स्वरूप का पूर्ण चारित्र प्रगट होना, वह क्षायिक चारित्र है। उस समय मोहनीय कर्म की शेष २१ प्रकृतियों का क्षय होता है। इस प्रकार जब कर्म का स्वयं क्षय होता है, तब मात्र उपचार से यह कहा जाता है कि "जीव ने कर्म का क्षय किया है"; परमार्थ से तो जीव ने अपनी अवस्था में पुरुषार्थ किया है, जड़ प्रकृति में नहीं ।

अध्याय २, सूत्र ४ - क्षायिकभाव के ९भेद

- क्षायिकभाव
  - क्षायिकसम्यक्त्व
  - क्षायिकचारित्र
  - केवलज्ञान
  - केवलदर्शन
  - क्षायिकदान
  - क्षायिकलाभ
  - क्षायिकभोग
  - क्षायिकउपभोग
  - क्षायिकवीर्य

केवलज्ञान: सम्पूर्ण ज्ञान का प्रगट होना, केवलज्ञान है; तब ज्ञानावरणीय कर्म की अवस्था क्षयरूप स्वयं होती है।

केवलदर्शन: सम्पूर्ण दर्शन का प्रगट होना, केवलदर्शन है; इस समय दर्शनावरणीय कर्म का स्वयं क्षय होता है।

अध्याय २, सूत्र ४ - क्षायिकभाव के ९भेद

- क्षायिकभाव
  - क्षायिकसम्यक्त्व
  - क्षायिकचारित्र
  - केवलज्ञान
  - केवलदर्शन
  - क्षायिकदान
  - क्षायिकलाभ
  - क्षायिकभोग
  - क्षायिकउपभोग
  - क्षायिकवीर्य

क्षायिकदान: अपने शुद्धस्वरूप का अपने को दान देना, वह निश्चय क्षायिकदान है और अनन्त जीवों को शुद्धस्वरूप की प्राप्ति में जो निमित्तपने की योग्यता, वह व्यवहार क्षायिक अभयदान है।

क्षायिकलाभ: अपने शुद्धस्वरूप का अपने को लाभ होना, वह निश्चय क्षायिक लाभ है और निमित्तरूप से शरीर के बल को स्थिर रखने में कारणरूप सूक्ष्म नोकर्मरूप अनन्त पुद्गल परमाणुओं का प्रति समय सम्बन्ध होना, क्षायिकलाभ है।

क्षायिकभोग: अपने शुद्धस्वभाव का भोग, क्षायिकभोग है और निमित्तरूप से पुष्पवृष्टि आदिक विशेषों का प्रगट होना, क्षायिकभोग है।

क्षायिकउपभोग: अपने शुद्धस्वरूप का प्रति समय उपभोग होना, वह क्षायिक उपभोग है और निमित्तरूप से छत्र, चमर, सिंहासनादि विभूतियों का होना, क्षायिक उपभोग है।

क्षायिकवीर्य: अपने शुद्धात्मस्वरूप में उत्कृष्ट सामर्थ्यरूप से प्रवृत्ति का होना, वह क्षायिकवीर्य है।

अध्याय २, सूत्र ५ - क्षायोपशमिक भाव के १८ भेद

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्ध्यश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥ ५ ॥

अर्थ - [ज्ञान अज्ञान] मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय, यह चार ज्ञान; तथा कुमति, कुश्रुत और कुअवधि – ये तीन अज्ञान [दर्शन] चक्षु, अचक्षु और अवधि, ये तीन दर्शन [लब्धयः] क्षायोपशमिकदान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य – ये पाँच लब्धियाँ [चतुः त्रि त्रिः भेदाः] इस प्रकार ४+३+३+५ = (१५) भेद तथा [सम्यकत्व] क्षायोपशमिकसम्यक्त्व [चारित्र] क्षायोपशमिकचारित्र [च] और [संयमासंयमाः] संयमासंयम – इस प्रकार क्षायोपशमिकभाव के १८ भेद हैं।

अध्याय २, सूत्र ५ - क्षायोपशमिक भाव के १८ भेद

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्ध्यश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥ ५ ॥

- **क्षायोपशमिक भाव**
  - ४ ज्ञान, ३ अज्ञान
    - मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय, यह चार ज्ञान; तथा कुमति, कुश्रुत और कुअवधि - ये तीन अज्ञान ।
  - ३ दर्शन
    - चक्षु, अचक्षु और अवधि, ये तीन दर्शन
  - दानादि ५ लब्धियाँ
    - क्षायोपशमिक दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य - ये पाँच लब्धियाँ
  - क्षायोपशमिक सम्यक्त्व
  - क्षायोपशमिक चारित्र
  - संयमासंयम

अध्याय २, सूत्र ५ - क्षायोपशमिक भाव के १८ भेद

(१) क्षायोपशमिकसम्यक्त्व –

- मिथ्यात्व की तथा अनन्तानुबन्धी की कर्म प्रकृतियों के उदयाभावी क्षय तथा उपशम की अपेक्षा से क्षायोपशमिकसम्यक्त्व
- सम्यक्त्व प्रकृति के उदय की अपेक्षा से उसी को वेदकसम्यक्त्व

(२) क्षायोपशमिकचारित्र –

- जितना वीरातगभाव है, उतना ही चारित्र है; यह क्षायोपशमिक चारित्र
- सम्यग्दर्शनपूर्वक-चारित्र के समय जो राग है, उसकी अपेक्षा से वह सरागचारित्र

(३) संयमासंयम –

- देशव्रत, अथवा विरताविरत चारित्र

जिनवाणी स्तुति

तीर्थंकरो जगतना जयवंत वर्तो,
ॐकारनाद् जिननो जयवंत वर्तो;
जिननां समोसरण सौ जयवंत वर्तो,
ने तीर्थ चार जगमां जयवंत वर्तो।

अहो! उपकार जिनवरनो, कुंदनो द्वनि दिव्यनो;
जिन-कुंद्-द्वनि आप्या, अहो! ते गुरु कहाननो।
जिन-कुंद्-द्वनि आप्या, अहो! ते भगवती मातनो।